Chapter उनचास

अक्रूर का हस्तिनापुर जाना

इस अध्याय में बतलाया गया है कि अक्रूर किस तरह हस्तिनापुर गये, वहाँ धृतराष्ट्र द्वारा अपने भतीजे पाण्डवों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार को देखा और फिर मथुरा लौट आये।

भगवान् कृष्ण के आदेश से अक्रूर हस्तिनापुर गये जहाँ वे कौरवों तथा पाण्डवों से मिले। फिर वे यह पता लगाने में लग गए कि धृतराष्ट्र पाण्डवों के साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं। इस कार्य के लिए अक्रूर को हस्तिनापुर में कई मास रहना पड़ा।

विदुर तथा कुन्तीदेवी ने अक्रूर को विस्तार में बतलाया कि धृतराष्ट्र के पुत्र, पाण्डवों के उच्च गुणों के कारण उनके प्रति ईर्ष्या रखने से, उन्हें अनेक दुष्ट साधनों द्वारा विनष्ट करने का प्रयास कर चुके हैं और आगे भी सताने का विचार कर रहे हैं। अश्रुपूरित नेत्रों से कुन्तीदेवी ने अक्रूर से पूछा, ''क्या कृष्ण, बलराम आदि मेरे सम्बन्धी तथा माता-पिता कभी मुझे तथा मेरे पुत्रों को याद करते हैं और क्या कृष्ण हमारी विपदा में सान्त्वना देने के लिए कभी आयेंगे?'' तब कुन्तीदेवी अपनी रक्षा के लिए कृष्ण का नाम-कीर्तन करने लगीं और उन्होंने उनके शरणागति सम्बन्धी मंत्रों का भी उच्चारण किया। अक्रूर ने कुन्तीदेवी को आश्वासन दिया, ''चूँकि आपके पुत्र धर्म तथा वायु जैसे देवताओं से उत्पन्न हैं अत: उन पर किसी प्रकार की विपदा आने की आशंका करने का कोई कारण नहीं है; प्रत्युत आपको विश्वस्त होना चाहिए कि उन्हें शीघ्र ही उत्तम सौभाग्य मिलने वाला है।''

तत्पश्चात् अक्रूर ने धृतराष्ट्र को कृष्ण तथा बलराम का सन्देश दिया। अक्रूर ने राजा से कहा,

''आपने पाण्डु की मृत्यु के बाद सिंहासन ग्रहण किया है। राजा का धर्म है कि वह सबों को समान दृष्टि से देखे अत: आपको चाहिए कि आप अपनी सारी प्रजा तथा अपने सभी सम्बन्धियों की रक्षा करें। किन्तु यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आपको इस जीवन में केवल अपयश हाथ लगेगा और अगले जीवन में नरक की यातना सहनी होगी। जीव अकेला ही जन्मता है और अकेले ही प्राण त्यागता है। अकेले ही वह अपने पुण्यों तथा पापों का फल भोगता है। यदि वह अपनी सही सही पहचान नहीं कर पाता है और उसके स्थान पर वह अपनी सन्तान को दुष्कर्मों में लग कर पालता है, तो वह नरक अवश्य जायेगा। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि जगत की अस्थिरता को समझे। यह जगत स्वप्नवत, जादूगर के भ्रमजाल या कल्पना की उड़ान जैसा है। मनुष्य को चाहिए कि शान्त तथा समभाव बने रहने के लिए, अपने मन को वश में रखे।''

इस पर धृतराष्ट्र ने कहा, ''हे अक्रूर! मैं तुम्हारे लाभप्रद शब्दों को और आगे नहीं सुन सकता जो अमरत्व के लिए अमृत तुल्य हैं। किन्तु अपने पुत्रों के प्रति प्रेम की कस कर बँधी गाँठ ने मुझे उनके प्रति पक्षपाती बना दिया है, जिससे तुम्हारे शब्द मेरे मन में स्थिर नहीं हो पा रहे। कोई भी प्राणी परमेश्वर की व्यवस्था को लाँघ नहीं सकता। यदुवंश में उनके अवतरित होने का प्रयोजन अवश्य ही पूरा होगा।''

धृतराष्ट्र की मनोवृत्ति जानकर अक्रूर ने उनके सम्बन्धियों तथा मित्रों से अनुमति ली और मथुरा लौट आये जहाँ उन्होंने कृष्ण तथा बलराम को सारी बातें कह सुनाईं।

श्रीशुक उवाच

स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम् ।
ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥ १ ॥
सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम् ।
कर्नं सुयोधनं द्रौणिं पाण्डवान्सुहृदोऽपरान् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; स:—वह (अक्रूर); गत्वा—जाकर; हास्तिन-पुरम्—हस्तिनापुर में; पौरव-इन्द्र—पुरुवंश के शासकों का; यश:—यश से; अङ्कितम्—अलंकृत; ददर्श—देखा; तत्र—वहाँ; आम्बिकेयम्—अम्बिका का पुत्र (धृतराष्ट्र); स—सहित; भीष्मम्—भीष्म; विदुरम्—विदुर को; पृथाम्—पृथा (पाण्डु की विधवा, कुन्ती); सह-पुत्रम्—अपने पुत्र सहित (सोमदत्त); च—तथा; बाह्लीकम्—महाराज बाह्लीक; भारद्वाजम्—द्रोण; स—तथा; गौतमम्—कृप; कर्णम्—कर्ण; सुयोधनम्—दुर्योधन; द्रौणिम्—द्रोण का पुत्र (अश्वत्थामा); पाण्डवान्—पाण्डु के पुत्रों को; सुहृद:—मित्र; अपरान्—अन्य।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अक्रूर पौरव शासकों की ख्याति से प्रसिद्ध नगरी हस्तिनापुर गये। वहाँ वे धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर तथा कुन्ती के साथ साथ बाह्लीक तथा उसके पुत्र सोमदत्त से मिले। उन्होंने द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पाण्डवगण तथा अन्य घनिष्ट मित्रों से भी भेंट की।

यथावदुपसङ्गम्य बन्धुभिर्गान्दिनीसुतः ।
सम्पृष्टस्तैः सुहृद्वार्तां स्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यथा-वत्—भलीभाँति; उपसङ्गम्य—मिलकर; बन्धुभिः—अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों से; गान्दिनी-सुतः—गान्दिनी-पुत्र, अक्रूर; सम्पृष्टः—पूछा; तैः—उनसे; सुहृत्—उनके प्रियजनों को; वार्ताम्—समाचार के लिए; स्वयम्—स्वयं; च—साथ ही; अपृच्छत्—पूछा; अव्ययम्—उनकी कुशलता के बारे में।

जब गान्दिनी-पुत्र अक्रूर अपने समस्त सम्बन्धियों तथा मित्रों से भलीभाँति मिल चुके तो उन लोगों ने अपने परिवार वालों के समाचार पूछे और प्रत्युत्तर में अक्रूर ने उनकी कुशलता पूछी।

उवास कतिचिन्मासान्राज्ञो वृत्तविवित्सया ।
दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

उवास—रहे; कतिचित्—कुछ; मासान्—महीने; राज्ञः—राजा (धृतराष्ट्र) का; वृत्त—कार्यकलाप; विवित्सया—जानने की इच्छा से; दुष्प्रजस्य—जिसके पुत्र दुष्ट थे; अल्प—निर्बल; सारस्य—जिसका संकल्प; खल—दुष्ट पुरुषों (यथा कर्ण) की; छन्द—इच्छाएँ; अनुवर्तिनः—अनुगमन करने वाला।

वे हस्तिनापुर में दुर्बल-इच्छा शक्ति वाले राजा के आचरण की छानबीन करने के लिए कई मास रहे जिसके पुत्र बुरे थे और जो अपने दुष्ट सलाहकारों की इच्छानुसार कार्य करता रहता था।

तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् ।
प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥
कृतं च धार्तराष्ट्रैर्यद्गरदानाद्यपेशलम् ।
आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तेजः—प्रभाव; ओजः—चातुरी; बलम्—बल; वीर्यम्—बहादुरी; प्रश्रय—दीनता, विनय; आदीन्—इत्यादि; च—तथा; सत्—उत्तम; गुणान्—गुणों को; प्रजा—नागरिकों का; अनुरागम्—महान् स्नेह; पार्थेषु—पृथा के पुत्रों के लिए; न सहद्भिः—सहन न कर सकने वालों के; चिकीर्षितम्—मनोभाव; कृतम्—किया जा चुका; च—भी; धार्तराष्ट्रैः—धृतराष्ट्र के पुत्रों द्वारा; यत्—जो; गर—विष का; दान—दान; आदि—इत्यादि; अपेशलम्—अशोभनीय; आचख्यौ—बताया; सर्वम्—हर बात; एव—निस्सन्देह; अस्मै—उसको (अक्रूर को); पृथा—कुन्ती; विदुरः—विदुर; एव च—दोनों ने।

अक्रूर से कुन्ती तथा विदुर ने धृतराष्ट्र के पुत्रों की दुर्भावनाओं का विस्तार से वर्णन किया। वे कुन्ती के पुत्रों के महान् गुणों—यथा उनके शक्तिशाली प्रभाव, सैन्य-कौशल, शारीरिक बल, बहादुरी तथा विनयशीलता—या उनके प्रति नागरिकों के अगाध स्नेह को सहन नहीं कर सकते थे। कुन्ती तथा विदुर ने अक्रूर को यह भी बतलाया कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने किस तरह पाण्डवों को विष देने तथा ऐसे ही अन्य षड्यंत्रों को रचने का प्रयास किया था।

पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् ।
उवाच जन्मनिलयं स्मरन्त्यश्रुकलेक्षणा ॥ ७॥

शब्दार्थ

पृथा—कुन्ती; तु—तथा; भ्रातरम्—अपने भाई (वृष्णि का पौत्र, कुन्ती तथा वसुदेव की दसवीं पीढ़ी का पूर्वज); प्राप्तम्—पाकर; अक्रूरम्—अक्रूर को; उपसृत्य—पास जाकर; तम्—उससे; उवाच—बोलीं; जन्म—अपने जन्म; निलयम्—घर (मथुरा); स्मरन्ती—स्मरण करती हुई; अश्रु—आँसुओं के; कला—अवशेषों से; ईक्षणा—जिसकी आँखें।

अपने भाई अक्रूर के आने का लाभ उठाकर कुन्तीदेवी उनके पास चुपके से पहुँचीं। अपनी जन्मभूमि (मायका) का स्मरण करते हुए वे अपनी आँखों में आँसू भरकर बोलीं।

अपि स्मरन्ति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे ।
भगिन्यौ भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; स्मरन्ति—स्मरण करते हैं; नः—हमको; सौम्य—हे भद्र; पितरौ—माता-पिता; भ्रातरः—भाई; च—तथा; मे—मेरी; भगिन्यौ—बहनें; भ्रातृ-पुत्राः—भाइयों के बेटे; च—तथा; जामयः—परिवार की स्त्रियाँ; सख्यः—सखियाँ; एव च—भी।

[महारानी कुन्ती ने कहा] : हे भद्र पुरुष, क्या मेरे माता-पिता, भाई, बहनें, भतीजे, परिवार की स्त्रियाँ तथा बचपन की सखियाँ अब भी हमें याद करती हैं?

भ्रात्रेयो भगवान्कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः ।
पैतृष्वस्त्रेयान्स्मरति रामश्चाम्बुरुहेक्षणः ॥ ९॥

शब्दार्थ

भ्रात्रेयः—भाई का पुत्र, भतीजा; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; शरण्यः—शरण देने वाला; भक्त—अपने भक्तों को; वत्सलः—दयालु; पैतृ-स्वस्त्रेयान्—अपने पिता की बहन के लड़कों को; स्मरति—स्मरण करता है; रामः—बलराम; च—तथा; अम्बुरुह—कमल की पंखड़ियों जैसे; ईक्षणः—आँखें।

क्या मेरा भतीजा कृष्ण, जो भगवान् है और अपने भक्तों की कृपालु शरण रूप है, अब भी अपनी बुआ के पुत्रों को स्मरण करता है? क्या कमल जैसी आँखों वाला राम भी उन्हें स्मरण

करता है?

सपत्नमध्ये शोचन्तीं वृकानां हरिणीमिव ।
सान्त्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सपत्न—शत्रुओं के; मध्ये—मध्य में; शोचन्तीम्—शोच करती; वृकानाम्—भेड़ियों के; हरिणीम्—हिरनी; इव—सदृश; सान्त्वयिष्यति—क्या वह सान्त्वना दिलायेगा; माम्—मुझको; वाक्यैः—अपने शब्दों से; पितृ—उनके पिता; हीनान्—वंचित; च—तथा; बालकान्—बालकों को।

इस समय जब मैं अपने शत्रुओं के बीच में उसी तरह कष्ट भोग रही हूँ जिस तरह एक हिरनी भेड़ियों के बीच में पाती है, तो क्या कृष्ण मुझे तथा पितृविहीन मेरे पुत्रों को अपनी वाणी से सान्त्वना देने आयेंगे?

कृष्ण कृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; महा-योगिन्—महान् आध्यात्मिक शक्ति के स्वामी; विश्व-आत्मन्—हे ब्रह्माण्ड के परमात्मा; विश्व-भावन—हे ब्रह्माण्ड के रक्षक; प्रपन्नाम्—शरणागत स्त्री की; पाहि—रक्षा करो; गोविन्द—हे गोविन्द; शिशुभिः—मेरे बच्चों समेत; च—तथा; अवसीदतीम्—दुख में डूब रही।

हे कृष्ण, हे कृष्ण! हे महान् योगी! हे परमात्मा तथा ब्रह्माण्ड के रक्षक! हे गोविन्द! मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपकी शरण में हूँ। मैं तथा मेरे पुत्र दुख से अभिभूत हैं।

तात्पर्य : कुन्तीदेवी ने सोचा, ''चूँकि भगवान् कृष्ण सारे ब्रह्माण्ड का पालन करते हैं अतः वे हमारे परिवार की रक्षा निश्चय ही कर सकते हैं।'' *अवसीदतीम्* शब्द बतलाता है कि कुन्तीदेवी पर कष्टों का पहाड़ टूट पड़ा था। इस तरह निराश, वे असहाय बनकर कृष्ण की शरण ले रही थीं। *श्रीमद्भागवत* के प्रथम स्कंध में कुन्ती यह स्वीकार करती हैं कि वास्तव में ये विपदाएँ तो आशीर्वाद थीं क्योंकि इनसे बाध्य होकर वे सदैव प्रगाढ़ रूप से कृष्णभावनाभावित रहती थीं।

नान्यत्तव पदाम्भोजात्पश्यामि शरणं नृणाम् ।
बिभ्यतां मृत्युसंसारादीस्वरस्यापवर्गिकात् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अन्यत्—अन्य; तव—तुम्हारे; पद-अम्भोजात्—चरणकमल की अपेक्षा; पश्यामि—देख रही हूँ; शरणम्—शरण; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; बिभ्यताम्—डरे हुए; मृत्यु—मृत्यु का; संसारात्—तथा पुनर्जन्म से; ईश्वरस्य—भगवान् का; आपवर्गिकात्—मोक्ष देने वाले।

जो लोग मृत्यु तथा पुनर्जन्म से भयभीत हैं, उनके लिए मैं आपके मोक्षदाता चरणकमलों के अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं देखती, क्योंकि आप परमेश्वर हैं।

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ।
योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; कृष्णाय—कृष्ण को; शुद्धाय—शुद्ध; ब्रह्मणे—ब्रह्म, परम सत्य; परम-आत्मने—परमात्मा; योग—शुद्ध-भक्ति के; ईश्वराय—नियन्ता को; योगाय—समस्त ज्ञान के उद्गम को; त्वाम्—तुमको; अहम्—मैं; शरणम्—शरण के लिए; गता—पास आई हूँ।

मैं परम शुद्ध, परम सत्य, परमात्मा, शुद्ध-भक्ति के स्वामी तथा समस्त ज्ञान के उद्गम को नमस्कार करती हूँ। मैं आपकी शरण में आई हूँ।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने *योगाय* शब्द का भावार्थ ''ज्ञान के स्रोत कृष्ण को'' किया है। *योग* शब्द का अर्थ ''सम्बन्ध जुड़ना'' तथा ''कोई वस्तु प्राप्त करना'' भी है। चेतन-प्राणी होने के कारण हमारा भक्ति के माध्यम से परमात्मा से सम्बन्ध है। इसी सम्बन्ध के माध्यम से हमें परमात्मा के पूर्ण ज्ञान का अनुभव होता है। चूँकि परमात्मा परम सत्य हैं अतएव उनके पूर्ण ज्ञान का अर्थ होता है प्रत्येक वस्तु का पूर्ण ज्ञान। जैसाकि *मुण्डक उपनिषद्* (१.३) में कहा गया है—*कस्मिन् भगवतो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति*—जब ब्रह्म को जान लिया जाता है, तो हर वस्तु समझ में आ जाती है। इस तरह भगवान् कृष्ण अपनी आध्यात्मिक शक्ति से अपने साथ हमारा सम्बन्ध स्वयं स्थापित करते हैं और यही सम्बन्ध समस्त आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत है। इस तरह आचार्य श्रीधर अपने विवेकपूर्ण भावार्थ द्वारा हमें कृष्णभावनाभावित दर्शन के विषय में गहनतर चिन्तन के लिए अभिप्रेरित करते हैं।

श्रीशुक उवाच
इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् ।
प्रारुदद्दुःखिता राजन्भवतां प्रपितामही ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इन शब्दों के साथ; अनुस्मृत्य—स्मरण करके; स्व-जनम्—अपने सगे-सम्बन्धियों को; कृष्णम्—कृष्ण को; च—तथा; जगत्—ब्रह्माण्ड के; ईश्वरम्—भगवान् को; प्रारुदत्—जोर से रोने लगीं; दुःखिता—दुखी; राजन्—हे राजन् (परीक्षित); भवताम्—आपकी; प्रपितामही—परदादी।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, इस तरह अपने परिवार वालों का तथा ब्रह्माण्ड के स्वामी कृष्ण का स्मरण करके आपकी परदादी कुन्तीदेवी शोक में रोने लगीं।

समदु:खसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशा: ।
सान्त्वयामासतु: कुन्तीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभि: ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सम—समान; दु:ख—दुख में; सुख:—तथा सुख में; अक्रूर:—अक्रूर; विदुर:—विदुर; च—तथा; महा-यशा:—अत्यन्त विख्यात; सान्त्वयाम् आसतु:—दोनों ने सान्त्वना दी; कुन्तीम्—श्रीमती कुन्तीदेवी को; तत्—उसके; पुत्र—पुत्रों के; उत्पत्ति—जन्मों के; हेतुभि:—कारणों के विषय में व्याख्या समेत।

महारानी कुन्ती के सुख-दुख में हिस्सा बँटाने वाले अक्रूर तथा सुविख्यात विदुर दोनों ने ही कुन्ती को उनके पुत्रों के जन्म की असाधारण घटना की याद दिलाते हुए सान्त्वना दी।

तात्पर्य : अक्रूर तथा विदुर ने महारानी कुन्ती को स्मरण दिलाया कि उनके पुत्र देवताओं द्वारा उत्पन्न हुए थे अत: उनको सामान्य मनुष्यों की तरह विनष्ट नहीं किया जा सकता। वस्तुत: इस अत्यन्त पवित्र कुल को असाधारण विजय प्राप्त होने वाली थी।

यास्यन्राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् ।
अवदत्सुहृदां मध्ये बन्धुभि: सौहृदोदितम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

यास्यन्—जब वह जाने ही वाला था; राजानम्—राजा (धृतराष्ट्र) के; अभ्येत्य—पास जाकर; विषमम्—ईर्ष्यालु; पुत्र—पुत्रों के प्रति; लालसम्—लाड़-प्यार से; अवदत्—बोला; सुहृदाम्—सम्बन्धियों के; मध्ये—बीच में; बन्धुभि:—शुभचिन्तक सम्बन्धियों (कृष्ण तथा बलराम) द्वारा; सौहृद—मैत्री में; उदितम्—जो कहा जा चुका है।

राजा धृतराष्ट्र के अपने पुत्रों के प्रति अत्यधिक स्नेह ने उसे पाण्डवों के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार करने के लिए बाध्य किया था। प्रस्थान करने के पूर्व अक्रूर राजा के पास गये जो उस समय अपने मित्रों तथा समर्थकों के बीच बैठा था। अक्रूर ने उसे वह सन्देश दिया जो उनके सम्बन्धी कृष्ण तथा बलराम ने मैत्रीवश भेजा था।

अक्रूर उवाच

भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन ।
भ्रातर्युपरते पाण्डावधुनासनमास्थित: ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

अक्रूर: उवाच—अक्रूर ने कहा; भो: भो:—हे प्रिय, हे प्रिय; वैचित्रवीर्य—विचित्रवीर्य के पुत्र; त्वम्—तुम; कुरूणाम्—कुरुओं की; कीर्ति—यश; वर्धन—हे बढ़ाने वाले; भ्रातरि—अपने भाई के; उपरते—दिवंगत हो जाने के बाद; पाण्डौ—महाराज पाण्डु के; अधुना—अब; आसनम्—सिंहासन पर; आस्थित:—आसीन।

अक्रूर ने कहा : हे प्रिय विचित्रवीर्य के पुत्र, हे कुरुओं की कीर्ति को बढ़ाने वाले, आपने अपने भाई पाण्डु के दिवंगत होने के बाद राज-सिंहासन ग्रहण किया है।

तात्पर्य : अक्रूर व्यंग्य-वचन बोल रहे थे क्योंकि वास्तव में उस सिंहासन पर पाण्डु के युवा पुत्रों को आसीन होना चाहिए था। चूँकि पाण्डु की मृत्यु के समय अभी उनके पुत्र आयु में छोटे होने के कारण शासन करने योग्य न थे, अत: उन्हें धृतराष्ट्र के संरक्षण में रखा गया था। किन्तु तब से काफी समय व्यतीत हो चुका था अत: उनके न्यायसंगत अधिकार को अब मान लिया जाना चाहिए था।

धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजा: शीलेन रञ्जयन् ।
वर्तमान: सम: स्वेषु श्रेय: कीर्तिमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

धर्मेण—धर्मपूर्वक; पालयन्—रक्षा करते हुए; उर्वीम्—पृथ्वी को; प्रजा:—नागरिकजन; शीलेन—सच्चरित्रता से; रञ्जयन्—प्रसन्न करते हुए; वर्तमान:—रहते हुए; सम:—समभाव; स्वेषु—अपने सम्बन्धियों के प्रति; श्रेय:—सफलता; कीर्तिम्—कीर्ति; अवाप्स्यसि—प्राप्त करोगे।

धर्मपूर्वक पृथ्वी की रक्षा करते हुए, अपनी सच्चरित्रता से अपनी प्रजा को प्रसन्न रखते हुए तथा अपने सारे सम्बन्धियों के साथ एकसमान व्यवहार करते हुए आप अवश्य ही सफलता तथा कीर्ति प्राप्त करेंगे।

तात्पर्य : अक्रूर ने धृतराष्ट्र से कहा कि यद्यपि उन्होंने सिंहासन हड़प रखा था किन्तु यदि वे अब धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार शासन करेंगे और अपना व्यवहार ठीक रखेंगे तो सफल हो सकेंगे।

अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तम: ।
तस्मात्समत्वे वर्तस्व पाण्डवेष्वात्मजेषु च ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अन्यथा—नहीं तो; तु—फिर भी; आचरन्—कर्म करते हुए; लोके—इस जगत में; गर्हित:—निन्दनीय; यास्यसे—प्राप्त करोगे; तम:—अंधकार; तस्मात्—इसलिए; समत्वे—समभाव में; वर्तस्व—स्थित रहो; पाण्डवेषु—पाण्डवों के प्रति; आत्म-जेषु—अपने पुत्रों के प्रति; च—तथा।

किन्तु यदि आप अन्यथा आचरण करेंगे तो लोग इसी लोक में आपकी निन्दा करेंगे और अगले जन्म में आपको नारकीय अंधकार में प्रवेश करना होगा। अत: आप पाण्डु के पुत्रों तथा अपने पुत्रों के प्रति एक-सा बर्ताव करें।

तात्पर्य : धृतराष्ट्र की सारी समस्या थी अपने दुष्ट पुत्रों के प्रति अत्यधिक लगाव। इसी घातक दोष के कारण उसका पतन हुआ। उसके चारों ओर अच्छी सलाह देने वालों की कमी नहीं थी और धृतराष्ट्र ने स्वीकार भी किया कि यद्यपि यह सलाह ठीक थी किन्तु वह उसका पालन नहीं कर सका। जब मन तथा हृदय शुद्ध होते हैं तभी मनुष्य में स्वच्छ व्यावहारिक बुद्धि आ सकती है।

नेह चात्यन्तसंवास: कस्यचित्केनचित्सह ।
राजन्स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभि: ॥ २० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; इह—इस जगत में; च—तथा; अत्यन्त—शाश्वत; संवास:—संगति (एक साथ निवास); कस्यचित्—किसी का; केनचित् सह—किसी के साथ; राजन्—हे राजन्; स्वेन—अपने; अपि—भी; देहेन—शरीर से; किम् उ—तो फिर क्या कहा जा सकता है; जाया—पत्नी; आत्म-ज—सन्तान; आदिभि:—इत्यादि से।

हे राजन्, इस जगत में किसी का किसी अन्य से कोई स्थायी सम्बन्ध नहीं है। हम अपने ही शरीर के साथ जब सदा के लिए नहीं रह सकते तो फिर हमारी पत्नी, सन्तान तथा अन्यों के लिए क्या कहा जा सकता है?

एक: प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

एक:—अकेला; प्रसूयते—जन्म लेता है; जन्तु:—जीव; एक:—अकेला; एव—भी; प्रलीयते—विनष्ट हो जाता है; एक:—अकेला; अनुभुङ्क्ते —भोग करता है; सुकृतम्—अपने अच्छे कर्म-फलों को; एक:—अकेला; एव च—तथा निश्चय ही; दुष्कृतम्—बुरे कर्म-फलों को।

हर प्राणी अकेला उत्पन्न होता है और अकेला मरता है। अकेला ही वह अपने अच्छे और बुरे कर्मों के फलों का भी अनुभव करता है।

तात्पर्य : यहाँ पर *अनुभुङ्क्ते* शब्द महत्त्वपूर्ण है। *भुङ्क्ते* का अर्थ है, "(प्राणी) अनुभव करता है" और *अनु* का अर्थ है "पीछे पीछे" या "क्रम में।" दूसरे शब्दों में, हम अपने कर्मों के नैतिक तथा आध्यात्मिक गुण के अनुसार दुख तथा सुख का अनुभव करते हैं। हम अपनी करनी के लिए जिम्मेदार हैं। धृतराष्ट्र झूठे ही अपने दुष्ट-बुद्धि पुत्रों से अत्यधिक लगाव रखता था। वह भूल गया था कि उसे अकेले ही अपने इस अविवेकपूर्ण आचरण के लिए कष्ट भोगना होगा।

अधर्मोपचितं वित्तं हरन्त्यन्येऽल्पमेधसः ।
सम्भोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥ २२॥

शब्दार्थ

अधर्म—अधर्म से; उपचितम्—जोड़ी गई; वित्तम्—सम्पत्ति; हरन्ति—चुरा लेते हैं; अन्ये—अन्य लोग; अल्प-मेधसः—अल्पज्ञ की; सम्भोजनीय—मदद चाहने वाला; अपदेशैः—झूठी उपाधियों से; जलानि—जल; इव—सदृश; जल-ओकसः—जल के निवासियों का।

प्रिय आश्रितों के वेश में अनजाने लोग मूर्ख व्यक्ति द्वारा पाप से अर्जित सम्पत्ति को उसी तरह चुरा लेते हैं जिस तरह मछली की सन्तानें उस जल को पी जाती हैं, जो उनका पालन करने वाला है।

तात्पर्य : सामान्य लोग अनुभव करते हैं कि अपनी सम्पत्ति के बिना वे जीवित नहीं रह सकते यद्यपि उनकी यह सम्पत्ति परिस्थितिजन्य एवं क्षणिक है। जिस तरह सम्पत्ति एक सामान्य व्यक्ति को जीवन देती है उसी तरह जल मछली को जीवन देता है। किन्तु उस व्यक्ति के प्रिय आश्रितजन उसकी सम्पत्ति चुरा लेते हैं जिस तरह मछलियों के बच्चे उसी जीवनदायी जल को पी जाते हैं जिसके कारण वे जीते हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के शब्दों में यह संसार ''भाग्य का धाम'' है।

पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपण्डितम् ।
तेऽकृतार्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुतादयः ॥ २३॥

शब्दार्थ

पुष्णाति—पोषण करता है; यान्—जो वस्तुएँ; अधर्मेण—पाप-कर्म से; स्व-बुद्ध्या—उन्हें अपनी सोचकर; तम्—उसको; अपण्डितम्—अशिक्षित; ते—वे; अकृत-अर्थम्—मनोरथ का निष्फल होना; प्रहिण्वन्ति—छोड़ देते हैं; प्राणाः—प्राण; रायः—सम्पत्ति; सुत-आदयः—सन्तान इत्यादि।

मूर्ख व्यक्ति अपने जीवन, सम्पत्ति तथा सन्तान एवं अन्य सम्बन्धियों का भरण-पोषण करने के लिए पाप-कर्म में प्रवृत्त होता है क्योंकि वह सोचता है ''ये वस्तुएँ मेरी हैं।'' किन्तु अन्त में ये ही वस्तुएँ उसे कुंठित अवस्था में छोड़ जाती हैं।

तात्पर्य : इन श्लोकों में अक्रूर धृतराष्ट्र को स्पष्ट सलाह देते हैं। जो लोग *महाभारत* की कथा जानते हैं, वे अनुभव करेंगे कि ये उपदेश कितने प्रासंगिक तथा भविष्यसूचक हैं और इन्हें न मानने के कारण धृतराष्ट्र को कितना कष्ट भोगना पड़ा। यद्यपि मनुष्य अपनी सम्पत्ति से चिपका रहता है किन्तु अन्त में सब कुछ नष्ट हो जाता है और भूल करने वाली आत्मा जन्म-मृत्यु के चक्र में बहा ले जायी जाती है।

स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ।
असिद्धार्थो विशत्यन्धं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥ २४॥

शब्दार्थ

स्वयम्—अपने लिए; किल्बिषम्—पापपूर्ण कर्म-फल; आदाय—लेकर; तैः—उनके द्वारा; त्यक्तः—छोड़ा हुआ; न—नहीं; अर्थ—अपने जीवन के लिए; कोविदः—ठीक से जानते हुए; असिद्ध—अपूर्ण; अर्थः—लक्ष्य; विशति—प्रवेश करता है; अन्धम्—गहन, घोर; स्व—निजी; धर्म—धर्म से; विमुखः—उदासीन; तमः—अंधकार (नर्क का)।

अपने तथाकथित आश्रितों से परित्यक्त होकर, जीवन के वास्तविक लक्ष्य से अनजान, अपने असली कर्तव्य से उदासीन तथा अपने उद्देश्यों को पूरा करने में असफल होकर, वह मूर्ख व्यक्ति अपने पाप-कर्मों को अपने साथ लेकर नर्क के अंधकार में प्रवेश करता है।

तात्पर्य : यह दुखपूर्ण विडम्बना है कि वे भौतिकतावादी व्यक्ति जो विश्वास, सुरक्षा, धन, परिवार इत्यादि का संग्रह करने के लिए कठिन श्रम करते हैं, अपने साथ केवल अपने पापों के दुखदायी फलों की गठरी के सिवा और कुछ न लेकर नरक के अंधकार में प्रवेश करते हैं। इसके विपरीत, जो लोग सम्पत्ति, बड़े परिवार इत्यादि का संग्रह करने की परवाह न करते हुए कृष्णभावनामृत अर्थात् आध्यात्मिक जीवन का अनुशीलन करते हैं, वे आध्यात्मिक सम्पदा से समृद्ध होकर अगले जीवन में प्रवेश करते हैं और आत्मा के गहन आनन्द का भोग करते हैं।

तस्माल्लोकमिमं राजन्स्वप्नमायामनोरथम् ।
वीक्ष्यायम्यात्मनात्मानं समः शान्तो भव प्रभो ॥ २५॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; लोकम्—संसार को; इमम्—इस; राजन्—हे राजन्; स्वप्न—स्वप्न; माया—जादूगरी; मनः-रथम्—या मन की कल्पना के रूप में; वीक्ष्य—देखकर; आयम्य—वश में करके; आत्मना—बुद्धि से; आत्मानम्—मन को; समः—समभाव; शान्तः—शान्त; भव—बनो; प्रभो—हे स्वामी।

अतः हे राजन्, इस संसार को स्वप्नवत, जादूगर का मायाजाल या मन की उड़ान समझ कर, बुद्धि से अपने मन को वश में कीजिये और हे स्वामी! आप समभाव तथा शान्त बनिये।

धृतराष्ट्र उवाच

यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् ।
तथानया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथामृतम् ॥ २६॥

शब्दार्थ

धृतराष्ट्रः उवाच—धृतराष्ट्र ने कहा; यथा—जिस तरह; वदति—बोलते हैं; कल्याणीम्—शुभ, मंगल; वाचम्—शब्द; दान—दान के; पते—हे स्वामी; भवान्—आप; तथा—उसी तरह; अनया—इससे; न तृप्यामि—मैं तृप्त नहीं हूँ; मर्त्यः—मरणशील; प्राप्य—प्राप्त करके; यथा—मानो; अमृतम्—अमृत।

धृतराष्ट्र ने कहा : हे दानपति, मैं आपके शुभ-वचनों को सुनते हुए कभी भी तृप्त नहीं हो सकता। निस्सन्देह, मैं उस मर्त्य प्राणी की तरह हूँ जिसे देवताओं का अमृत प्राप्त हो चुका है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के मत से धृतराष्ट्र को इस बात का गर्व था कि जो कुछ अक्रूर कह रहे हैं वह उसे पहले से ज्ञात है किन्तु कूटनीतिक गम्भीरता बनाये रखने के लिए ही वह साधु-पुरुष की तरह बोल रहा था।

तथापि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले ।
पुत्रानुरागविषमे विद्युत्सौदामनी यथा ॥ २७॥

शब्दार्थ

तथा अपि—फिर भी; सूनृता—मोहक शब्द; सौम्य—हे भद्र; हृदि—मेरे हृदय में; न स्थीयते—स्थिर नहीं रहते; चले—जो चलायमान है; पुत्र—मेरे पुत्रों के लिए; अनुराग—स्नेह से; विषमे—पक्षपातपूर्ण; विद्युत्—बिजली; सौदामनी—बादल में; यथा—जिस तरह।

फिर भी, हे भद्र अक्रूर, क्योंकि मेरा अस्थिर हृदय अपने पुत्रों के स्नेह से पक्षपातयुक्त है इसलिए आपके ये मोहक शब्द हृदय में स्थिर नहीं टिक पाते, जिस तरह बिजली बादल में स्थिर नहीं रह सकती।

ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान् ।
भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ २८॥

शब्दार्थ

ईश्वरस्य—भगवान् के; विधिम्—कानून को; कः—क्या; नु—तनिक भी; विधुनोति—हटा सकता है; अन्यथा—नहीं तो; पुमान्—पुरुष; भूमेः—पृथ्वी का; भार—बोझ; अवताराय—कम करने के लिए; यः—जो; अवतीर्णः—अवतरित हुआ है; यदोः—यदु के; कुले—परिवार में।

भला उन भगवान् के आदेशों का उल्लंघन कौन कर सकता है, जो पृथ्वी का भार कम करने के लिए अब यदुवंश में अवतार ले चुके हैं?

तात्पर्य : स्वाभाविक है कि हम धृतराष्ट्र से पूछें, "यदि तुम यह सब जानते हो तो ठीक से आचरण क्यों नहीं करते?" वस्तुतः, धृतराष्ट्र की भी यही स्थिति है : वह अनुभव करता है कि क्योंकि घटनाएँ पहले से गतिशील हो चुकी हैं, वह उन्हें बदलने में अक्षम है। असल में उसके अनुराग तथा उसकी पापपूर्ण लालसाओं से घटनाएँ गतिशील थीं अतएव उसे अपने कर्मों का उत्तरदायित्व लेना

चाहिए था। भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* (५.१५) में स्पष्ट कहा है—*नादत्ते कस्यचित् पापम्*—भगवान् किसी के पापपूर्ण कृत्यों का जिम्मा नहीं लेते। यह दावा करना एक घातक नीति है कि हम ''विधाता अथवा भाग्य'' के कारण अनुचित कर्म कर रहे हैं। हमें चाहिए कि गम्भीरतापूर्वक कृष्णभावनामृत को ग्रहण करें और अपने तथा अपने संगियों के लिए मंगलमय भविष्य का निर्माण करें।

अन्त में, कोई यह तर्क कर सकता है कि जो भी हो, धृतराष्ट्र तो भगवान् की लीलाओं में सम्मिलित हैं और वास्तव में वह उनका नित्य-संगी है। इसके उत्तर में हम इतना ही कह सकते हैं कि भगवान् की लीलाएँ न केवल मनोरंजन कराने वाली हैं अपितु उपदेशात्मक भी हैं और यहाँ यही शिक्षा मिलती है कि धृतराष्ट्र को उचित कर्म करना चाहिए था। भगवान् यही शिक्षा देना चाहते थे। धृतराष्ट्र कहता है कि कृष्ण पृथ्वी का भार उतारने के लिए आये हैं किन्तु पृथ्वी का भार असल में इसके निवासियों का अनुचित आचरण ही है। अत: भगवान् यहाँ जो शिक्षा देना चाहते हैं उसे हम अपने हित के लिए ग्रहण करें।

यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं
सृष्ट्वा गुणान्विभजते तदनुप्रविष्ट: ।
तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्र-
संसारचक्रगतये परमेश्वराय ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

य:—जो; दुर्विमर्श—अचिन्त्य; पथया—जिसका मार्ग; निज—अपनी; मायया—सृजनात्मक शक्ति से; इदम्—इस ब्रह्माण्ड को; सृष्ट्वा—सृजित करके; गुणान्—इसके गुणों को; विभजते—बाँट देता है; तत्—उसी के भीतर; अनुप्रविष्ट:—प्रवेश करते हुए; तस्मै—उसको; नम:—नमस्कार; दुरवबोध—अथाह; विहार—लीला; तन्त्र—तात्पर्य; संसार—जन्म तथा मृत्यु का; चक्र—चक्कर; गतये—तथा मोक्ष; परम-ईश्वराय—परम नियन्ता के प्रति।

मैं उन भगवान् को नमस्कार करता हूँ जो अपनी भौतिक शक्ति की अचिन्त्य क्रियाशीलता से इस ब्रह्माण्ड का सृजन करते हैं और फिर सृष्टि के भीतर प्रविष्ट होकर प्रकृति के विभिन्न गुणों को वितरित कर देते हैं। जिनकी लीलाओं का अर्थ अगाध है, उन्हीं से यह जन्म-मृत्यु का बन्धनकारी चक्र तथा उससे मोक्ष पाने की विधि उत्पन्न हुए हैं।

तात्पर्य : इतना सब कुछ कहने पर भी धृतराष्ट्र सामान्य व्यक्ति न होकर भगवान् कृष्ण का संगी था। निश्चय ही भगवान् के प्रति ऐसी विद्वत्तापूर्ण स्तुति कोई सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता था।

श्रीशुक उवाच
इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः ।
सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; अभिप्रेत्य—निश्चित करके; नृपतेः—राजा की; अभिप्रायम्—मनोवृत्ति; सः—वह; यादवः—राजा यदु का वंशज, अक्रूर; सुहृद्भिः—अपने शुभचिन्तकों द्वारा; समनुज्ञातः—विदा होने की अनुमति दिया हुआ; पुनः—फिर; यदु-पुरीम्—यदुवंश की नगरी में; अगात्—गया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा, इस तरह राजा के अभिप्राय को समझकर यदुवंशी अक्रूर ने अपने शुभचिन्तक सम्बन्धियों तथा मित्रों से अनुमति ली और यादवों की राजधानी लौट आये।

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ।
पाण्दवान्प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

शशंस—सूचित किया; राम-कृष्णाभ्याम्—बलराम तथा कृष्ण को; धृतराष्ट्र-विचेष्टितम्—धृतराष्ट्र के आचरण; पाण्डवान् प्रति—पाण्डु के पुत्रों के प्रति; कौरव्य—हे कुरुवंशी (परीक्षित); यत्—जिस; अर्थम्—प्रयोजन के लिए; प्रेषितः—भेजा गया; स्वयम्—स्वयं।

अक्रूर ने बलराम तथा कृष्ण को यह सूचित किया कि धृतराष्ट्र का पाण्डवों के प्रति कैसा बर्ताव है। इस तरह हे कुरुवंशी, उन्होंने उस अभिप्राय की पूर्ति कर दी जिसके लिए वे भेजे गये थे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''अक्रूर का हस्तिनापुर जाना'' नामक उनचासवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।